दीक्षा और उसका स्वरूप

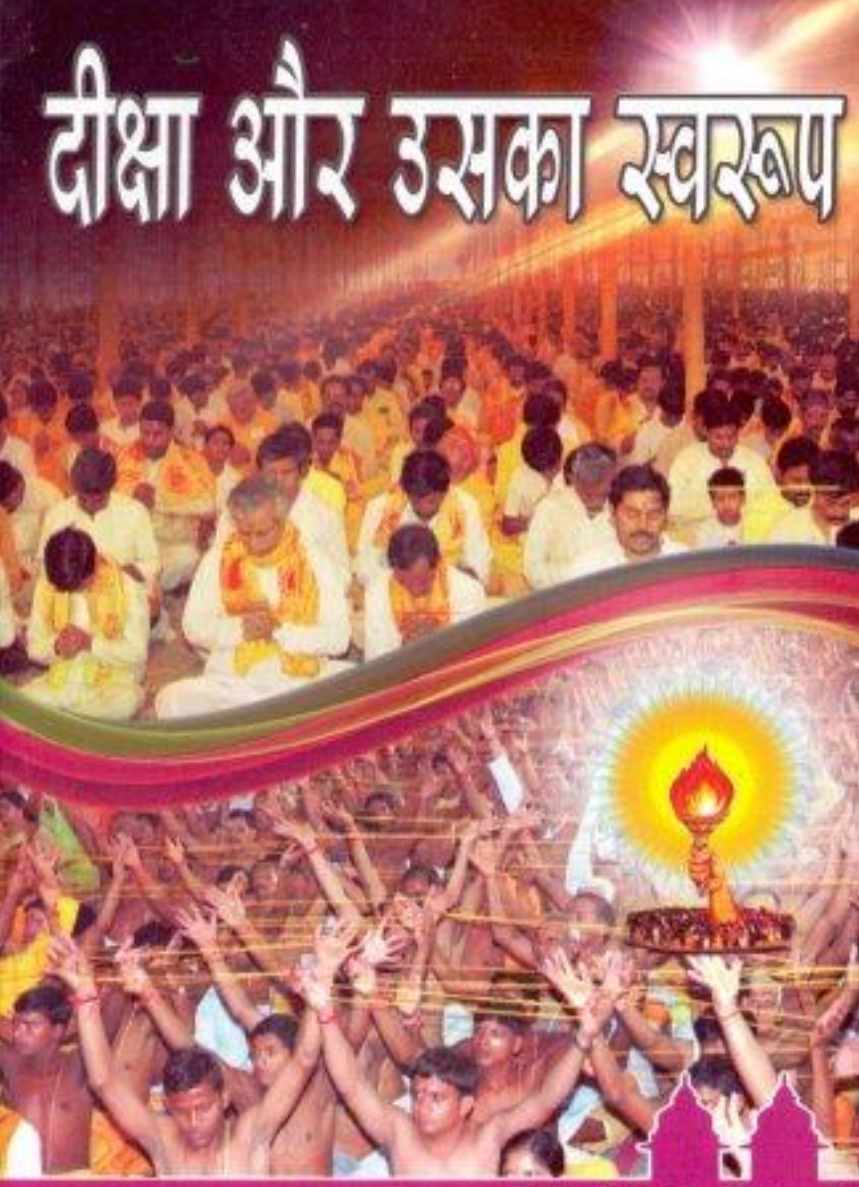

—पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

दीक्षा और उसका स्वरूप

नर-पशु से नर-नारायण

भारतीय धर्म के अनुसार मनुष्यों को दो बार जन्म लेने वाला होना चाहिए। एक बार जन्म सभी कीट-पतंगों और जीव-जन्तुओं का हुआ करता है। एक बार जन्म का अर्थ है- शरीर का जन्म। शरीर के जन्म का अर्थ है- शरीर से सम्बन्धित रहने वाली इच्छाओं और वासनाओं, कामनाओं और आवश्यकताओं का विकास और उनकी पूर्ति। दूसरा जन्म है- जीवात्मा का जन्म, उद्देश्य का जन्म और परमात्मा के साथ आत्मा को जोड़ देने वाला जन्म। इसी का नाम मनुष्य है। जो मनुष्य पेट के लिए जिया, सन्तान उत्पन्न करने के लिए जिया, वासना और तृष्णा के लिए जिया; वो उसी श्रेणी में भावनात्मक दृष्टि से रखा जा सकता है, जिस श्रेणी में पशु और पक्षियों को रखा गया है, कीड़े और मकोड़ों को रखा गया है। कीड़े, मकोड़ों का भी उद्देश्य यही है- पेट पाले, बच्चा पैदा करे; दूसरा उनके सामने कोई लक्ष्य नहीं, कोई दिशा नहीं, कोई आकांक्षा नहीं, कोई उद्देश्य नहीं। जिन लोगों के सामने यही दो बातें हैं, उनको इसी श्रेणी में गिना जायेगा। चाहे वो विद्वान् हों, पढ़े-लिखे हों, लेकिन जिनका अन्तःकरण इन दो ही क्रियाओं के पीछे लगा हुआ है; दो ही महत्त्वाकांक्षाएँ हैं, उन्हें पशु योनि से आगे कुछ नहीं कह सकते; उनको नर-पशु कहा जायेगा।

भारतीय धर्म की एक बड़ी विशेषता यह है, जिसने नर को पशु की योनि में पैदा होने के लिए इनकार नहीं किया, लेकिन इस बात पर जोर दिया है कि जैसे-जैसे मानवीय चेतना का विकास होना चाहिए, उस हिसाब से उसको मनुष्य के रूप में विकसित

होना चाहिए और मनुष्यता की जिम्मेदारियों को अपने सिर पर वहन करना चाहिए। मनुष्य की जिम्मेदारियाँ क्या हैं? मनुष्य की वे जिम्मेदारियाँ जो जीवात्मा की जिम्मेदारी है। भगवान् के उद्देश्यों को लेकर के मनुष्य को पैदा किया गया है, उसको पूरा करने की जिम्मेदारियाँ हैं। भगवान् ने मनुष्य को कुछ विशेष उद्देश्य से बनाया और उसके पीछे उसका विशेष प्रयोजन था। ऐसा न होता, तो जो अन्य कीड़े और मकोड़ों को, जीव और जन्तुओं को सुख-सुविधाएँ दी थीं, उससे ज्यादा मनुष्यों को क्यों दी होतीं?

मनुष्यों को बहुत सुविधाएँ दी गयी हैं। मनुष्यों को बोलना आता है, मनुष्यों को पढ़ना आता है, लिखना आता है, सोचना आता है। उसको इतनी बुद्धि मिली हुई है, जिससे उसने प्रकृति के अनेक रहस्यों को ढूँढ़ करके प्रकृति को अपने अनुकूल बना लिया है और जो सूक्ष्म शक्तियाँ हैं, उससे अपना काम लेना शुरू कर दिया है। जबकि दूसरे जीव और जन्तुओं को प्रकृति की शक्तियों के ऊपर नियंत्रण कर पाना तो दूर, उनका मुकाबला करने की भी सामर्थ्य नहीं है। ठंड पड़ती है, हजारों कीड़े-मकोड़े व मच्छर मर जाते हैं। गर्मी पड़ती है, हजारों कीड़े-मकोड़े मर जाते हैं। प्रकृति का मुकाबला करने तक की शक्ति नहीं है और प्रकृति को अपने वश में करने की शक्ति कहाँ?

ऐसा चिंतन और ऐसा मन, ऐसी विशेषताएँ और ऐसी विभूतियाँ और ऐसी सिद्धियाँ जो मनुष्यों को मिली हैं, उसे मनुष्यों को भगवान् ने अनायास ही नहीं दी हैं। पक्षपाती नहीं है भगवान्। किसी भी जीव के साथ में पक्षपात करे और किसी से न करे, ये कैसे हो सकता है? सारी की सारी योनियाँ और सभी जीव भगवान् को समान रूप से प्यारे थे। क्या कीड़े-मकोड़े क्या मनुष्य? सभी

तो उसके बालक हैं। कोई पिता अपने बालकों के साथ क्यों पक्षपात करेगा ? किसी को ज्यादा क्यों देगा? किसी को कम क्यों देगा? कोई न्यायशील पिता-सामान्य मनुष्य तक ऐसा नहीं कर सकता, तो भगवान् किस तरीके से ऐसा कर सकता है ?

विशेष अनुदान विशेष दायित्व

भगवान् ने मनुष्य के साथ ऐसा कोई पक्षपात नहीं किया है, बल्कि उसे अमानत के रूप में कुछ विभूतियाँ दी हैं। जिसको सोचना कहते हैं, जिसको विचारणा कहते हैं, जिसको बोलना कहते हैं, जिसको भावनाएँ कहते हैं, जिसको उसकी विशेषताएँ कहते हैं, सिद्धियाँ-विभूतियाँ कहते हैं। ये सब अमानतें हैं। ये अमानतें मनुष्यों को इसलिए नहीं दी गई हैं कि उनके द्वारा वह सुख-सुविधाएँ कमाये और स्वयं के लिए अपनी ऐय्याशी या विलासिता के साधन इकट्ठे करे और अपना अहंकार पूरा करे। ये सारी की सारी चीजें सिर्फ इसलिए उसको दी गयी हैं कि इन चीजों के माध्यम से वो जो भगवान् का इतना बड़ा विश्व पड़ा हुआ है, उसकी दिक्कतें और कठिनाइयों का समाधान करे और उसे अधिक सुन्दर और सुव्यवस्थित बनाने के लिए प्रयत्न करे। उसके लिए सब अमानतें हैं।

बैंक के खजांची के पास धन रखा रहता है और इसलिए रखा रहता है कि सरकारी प्रयोजनों के लिए इस पैसे को खर्च करे। उसको उतना ही इस्तेमाल करने का हक है, जितना कि उसको वेतन मिलता है। खजाने में अगर लाखों रुपये रखे हों, तो खजांची उन्हें कैसे खर्च कर सकता है? उसे क्यों खर्च करना चाहिए? पुलिस के पास या फौज के पास बहुत सारी बन्दूकें और कारतूसें होती हैं वे इसलिए थोड़े ही उसके पास होती हैं कि उसको अपने लिए उनका इस्तेमाल करना चाहिए और चाहे जो तरीका अख्तियार

करना चाहिए, ये नहीं हो सकता। कप्तान को और जो फौज का कमाण्डर है, उसको अपना वेतन लेकर जितनी सुविधाएँ मिली हैं, उसी से काम चलाना चाहिए और बाकी जो उसके पास बहुत सारी सामर्थ्य और शक्ति बंदूक चलाने के लिए मिली है, उसको सिर्फ उसी काम में खर्च करना चाहिए, जिस काम के लिए सरकार ने उसको सौंपा है।

हमारी सरकार भगवान् है और मनुष्य के पास जो कुछ भी विभूतियाँ, अक्ल और विशेषताएँ हैं, वे अपनी व्यक्तिगत ऐय्याशी और व्यक्तिगत सुविधा और व्यक्तिगत शौक-मौज के लिए नहीं हैं और व्यक्तिगत अहंकार की तृप्ति के लिए नहीं है। इसलिए जो कुछ भी उसको विशेषता दी गई है। उसको उतना बड़ा जिम्मेदार आदमी समझा जाए और जिम्मेदारी उस रूप में निभाए कि सारे के सारे विश्व को सुंदर बनाने में, सुव्यवस्थित बनाने में, समुन्नत बनाने में उसका महान् योगदान संभव हो।

भगवान् का बस एक ही उद्देश्य है- निःस्वार्थ प्रेम। इसके आधार पर भगवान् ने मनुष्य को इतना ज्यादा प्यार किया। मनुष्य को उस तरह का मस्तिष्क दिया है, जितना कीमती कम्प्यूटर दुनिया में आज तक नहीं बना। करोड़ों रुपये की कीमत का है, मानवीय मस्तिष्क। मनुष्य की आँखें, मनुष्य के कान, नाक, आँख, वाणी एक से एक चीज ऐसी हैं, जिनकी रुपयों में कीमत नहीं आँकी जाती है। मनुष्य के सोचने का तरीका इतना बेहतरीन है, जिसके ऊपर सारी दुनिया की दौलत न्योछावर की जा सकती है।

ऐसा कीमती मनुष्य और ऐसा समर्थ मनुष्य- जिस भगवान् ने बनाया है, उस भगवान् की जरूर ये आकांक्षा रही है कि मेरी इस दुनिया को समुन्नत और सुखी बनाने में यह प्राणी मेरे सहायक के रूप में, और मेरे कर्मचारी के रूप में, मेरे असिस्टेण्ट के रूप

में मेरे राजकुमार के रूप में काम करेगा और मेरी सृष्टि को समुन्नत रखेगा।

मानव जीवन की विशेषताओं का और भगवान् के द्वारा विशेष विभूतियाँ मनुष्य को देने का एक और भी उद्देश्य है। जब मनुष्य इस जिम्मेदारी को समझ ले और ये समझ ले कि 'मैं क्यों पैदा हुआ हूँ, और यदि मैं पैदा हुआ हूँ? तो मुझे अब क्या करना चाहिए?' यह बात अगर समझ में आ जाए, तो समझना चाहिए कि इस आदमी का नाम मनुष्य है और इसके भीतर मनुष्यता का उदय हुआ और इसके अंदर भगवान् का उदय हो गया और भगवान् की वाणी उदय हो गयी, भगवान् की विचारणाएँ उदय हो गयीं।

यदि इतना न हो, तो उसको क्या कहा जाए? उसके लिए सिर्फ एक ही शब्द काम में लाया जा सकता है, उसका नाम है नर-पशु। नर-पशु कई तरह के हैं और नर-पशु भी दुनिया में बहुत सारे हैं। अधिकांश आदमी नर-पशु हैं। नर-पशु हो करके नर-नारायण होकर और पुरुष-पुरुषोत्तम और मानव को महामानव होकर के जीना चाहिए, आदर्शवादी और सिद्धान्तवादी होकर जीना चाहिए। यह दो उद्देश्य ही तो मनुष्य के हैं। जहाँ दूसरे लोग, दूसरे प्राणी इन्द्रियों की प्रेरणाओं से प्रभावित होते हैं, अपने अन्तःमन की प्रेरणा से प्रभावित होते हैं, जन्म-जन्मान्तरों के कुसंस्कारों से प्रभावित होते हैं, समीपवर्ती वातावरण से प्रभावित होते हैं और उसी के अनुसार अपनी गतिविधियों का निर्धारण करते हैं, वहीं मनुष्य वह है, जो किसी बाहर की परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होता है, बल्कि अन्तरंग की प्रेरणा और भगवान् की पुकार और जीवन के उद्देश्य से ही प्रभावित होता है और सारी दुनिया की बातों को, सारी दुनिया के लोभ और आकर्षणों को उठाकर एक कोने पर रख देता है। उसी का नाम मनुष्य है।

दीक्षा क्या? किससे लें?

बस यही मनुष्यता की दीक्षा और मनुष्यता की ऊपरी परिधि में प्रवेश करने का शुभारंभ है। इसी का नाम अपने यहाँ गायत्री मंत्र की दीक्षा है। ये दीक्षा आवश्यक मानी गई है और दीक्षा ली जानी चाहिए। लेकिन दीक्षा के लिए व्यक्ति का कोई उतना ज्यादा महत्त्व नहीं है। व्यक्ति जब दीक्षा देता है, अपने आप को व्यक्ति गुरु बनाता है और अपने शरीर के साथ में शिष्य के शरीर को जोड़ने लगता है, तो उसका नाम गुरुडम है। गुरुडम का कोई मूल्य नहीं है। गुरुडम से नुकसान भी है। यदि व्यक्ति समर्थ नहीं है, शुद्ध और पवित्र नहीं है और निर्लोभ नहीं है और उसकी आत्मा उतनी ऊँची उठी हुई नहीं है, घटिया आदमी है; तब उसके साथ में सम्बन्ध मिला लिया जाए, तो वह शिष्य भी उसी तरह का घटिया होता हुआ चला जाएगा। गुरु का उत्तरदायित्त्व उठाना सामान्य काम नहीं है। गुरु दूसरा भगवान् का स्वरूप है और भगवान् के प्रतीक रूप में सबसे श्रेष्ठ जो मनुष्य हैं, व्यक्तिगत रूप से सिर्फ उन्हें ही दीक्षा देनी चाहिए, अन्य व्यक्तियों को दीक्षा नहीं देनी चाहिए।

उन्हें (दीक्षा देने वालों को) भगवान् के साथ सम्बन्ध मिला देने का काम करना चाहिए। विवाह सिर्फ उसी आदमी को करना चाहिए, जो अपनी बीबी को प्यार देने और उसके लिए रोटी जुटाने में समर्थ है। विवाह संस्कार तो कोई भी करा सकता है, पण्डित भी करा सकता है। दक्षिणा दे करके विवाह करा ले, बात खतम। लेकिन पण्डित जी कहने लगे कि इस लड़की से जो एम.ए. पास है और जो पीएच. डी. है, मैं ब्याह करूँगा। लेकिन उसके लिए अपने पास जवानी भी होनी चाहिए, पैसे भी होने चाहिए, अनेक बातें

होनी चाहिए। अगर ये सब न हों, तो कोई लड़की कैसे ब्याह करने को तैयार हो जाएगी? दीक्षा को एक तरह का आध्यात्मिक विवाह ही कहते हैं। आध्यात्मिक विवाह करना हर आदमी के वश की बात नहीं है। बीबी का पालन करना, बच्चे पैदा करना और बीबी की रखवाली करना हरेक का काम है क्या? नहीं, हरेक का काम नहीं है।

व्यक्तिगत रूप से (गुरु बनकर) दीक्षा देना भी सम्भव है लेकिन वह हर आदमी का काम नहीं है। जिस आदमी के पास इतना प्राण तत्त्व और इतना उत्कृष्ट जीवन और इतना अटूट आत्मबल न हो; जो अपने आत्मबल की सम्पदा में से, अपने तप की पूँजी में से, अपने ज्ञान की राशि में से, दूसरों को महत्त्वपूर्ण अंश देने में समर्थ न हो, ऐसे आदमी को दीक्षा नहीं देनी चाहिए और न ऐसों से किसी को दीक्षा लेनी चाहिये। यदि उनसे लिया गया है, तो उससे हानि भी हो सकती है। मान लीजिए कोई पति तपेदिक का बीमार है या सिफिलिस का बीमार है या सुजाक का बीमार है, उसके साथ में बीबी ब्याह कर ले, तो जहाँ पति रोटी कमाकर के खिला सकता है, वहाँ उसकी वह बीमारियाँ भी उसकी पत्नी में आ जायेगी और उसका जीवन चौपट हो जायेगा।

बिना समझे-बूझे कोई भी आदमी आजकल दीक्षा देने लगते हैं, ताकि रुपया-अठन्नी का ही लाभ होने लग जाय और पैर पुजाने का लाभ होने लगे और अपना गुजारा चलने लगे और फोकट का सम्मान भी मिलने लगे। ये बहुत ही बेहूदी बात है और इस तरह की हिम्मत जो आदमी करते हैं, वे बहुत ही जलील आदमी हैं। ऐसे जलील आदमियों को इस समाज में से एक कोने में उठाकर फेंक देना चाहिए। दीक्षा के लिए कोई आवश्यक नहीं है कि किसी व्यक्ति से ही दीक्षा ली जाए। कोई जरूरी नहीं है। दीक्षा

का अर्थ प्रतिज्ञा है। दीक्षा का अर्थ वह होता है कि किसी आदमी के साथ जुड़कर के उसकी तपश्चर्या, उसका ज्ञान और उसके आत्मबल की सम्पदा का व्यक्तिगत रूप से लाभ उठाया जाए, ये भी एक तरीका है; लेकिन मैं देखता हूँ कि आज ऐसे आदमी दुनिया में लगभग नहीं हैं।

योग विशेष से सैकड़ों वर्ष पीछे कोई-कोई ही ऐसे आदमी पैदा होते हैं। वह पैदा होते हैं, जिनके पास वशिष्ठ जैसा ज्ञान और विश्वामित्र जैसा तप दोनों का समुचित रूप से समन्वय हो और यदि इन दो आवश्यकताओं को पूरा करने वाला नहीं है, तो निरर्थक है। उसकी दीक्षा से कोई फायदा नहीं है, बल्कि और भी अज्ञान फैल सकता है। दूसरे और भी आदमियों को चालाकी और धूर्तता करने का मौका मिल सकता है।

मैं समझता हूँ कि अभी फिलहाल की जो परिस्थितियाँ हैं, उनमें किसी आदमी को किसी व्यक्ति से दीक्षा नहीं लेनी चाहिए। बल्कि सिर्फ भगवान् के साथ, आत्मा के साथ, परमात्मा के साथ ब्याह करना चाहिए और अपनी जीवात्मा को भगवान् के साथ भगवान् के कार्यों में करने के लिए एक संकल्प और प्रतिज्ञा लेनी चाहिए। विवाह के समय भी यों ऐसे ही स्त्री-पुरुष साथ रहने लगें, तो कोई हर्ज नहीं है। लेकिन विवाह होता है, सामाजिक रूप में होता है, उत्सव के साथ में होता है, तो दोनों की- स्त्री-पुरुष के मन पर एक छाप पड़ जाती है कि हमारा नियमित और विधिवत् विवाह हुआ था। इसी तरह किसी आदमी ने अपने जीवन में कोई प्रतिज्ञा ली है, उसके ऊपर कोई उसकी मनोवैज्ञानिक छाप हमेशा के लिए पड़ जाती है। शपथ लेने की याद बनी रहती है। दीक्षा लेना एक शपथ लेने के बराबर है। हमने क्या ली शपथ? दीक्षा के दिन हमने

ये शपथ ली कि हम मनुष्य का जीवन जियेंगे और मनुष्य के सिद्धान्त और मनुष्य के आदर्शों को ध्यान में रखेंगे।

दीक्षा– एक शपथ-एक अनुबन्ध

जो मनुष्य का जीवन मिला है, उसको हम भूलेंगे नहीं। अब हम हिम्मत के साथ उसके सामने कदम बढ़ायेंगे। जैसे पहली बार अन्न खाया जाता है, उस दिन अन्नप्राशन का उत्सव मनाया जाता है। उसी प्रकार से जिस दिन प्रतिज्ञामय जीवन जीने की कसम खाई जाती है, शपथ खाई जाती है कि हमारा मुख इस ओर मुड़ गया और हम अपने कर्त्तव्यों की ओर अग्रसर होने को कटिबद्ध हो गये हैं; उसकी जो प्रतिज्ञा की जाती है, उसकी जो शपथ ली जाती है, उस शपथ का नाम 'दीक्षा समारोह है', 'दीक्षा उत्सव' है, 'दीक्षा संस्कार' है। शपथ ली जाती है कि हम अपने आपको उससे यह प्रकृति के साथ नहीं, वासना के साथ नहीं, तृष्णा के साथ नहीं, बल्कि अपने को अपनी जीवात्मा के साथ जोड़ते हैं और अपने मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार को अपनी आत्मा के साथ जोड़ते हैं। अपनी क्रियाशीलता और सम्पदा को अपनी आत्मा के साथ जोड़ते हैं। आत्मा का अर्थ परमात्मा जो कि शुद्ध और परिष्कृत रूप से हमारे अंतःकरण में बैठा हुआ है।

हम अपने अन्तरंग की पुकार को सुनें और संकल्प करें कि अपनी जीवात्मा को जो हमारा वास्तविक स्वरूप है, सुखी व सम्मुन्नत बनाने के लिए अपनी बाह्य और भौतिक शक्तियों का इस्तेमाल करेंगे। हमारे पास शारीरिक शक्ति है, हम अपनी जीवात्मा को सुखी और समुन्नत बनाने के लिए उस शारीरिक शक्ति को खर्च करेंगे। हमारे पास बुद्धि है, हम उस बुद्धि को अपने जीवात्मा को सुखी और समुन्नत बनाने में खर्च करेंगे। हमारे पास

जो धन है, उसे हम अपनी जीवात्मा को सुखी और समुन्नत बनाने के लिए खर्च करेंगे। हमारा जो प्रभाव, वर्चस् संसार में है, उससे अपनी जीवात्मा को सुखी और समुन्नत बनाने के लिए खर्च करेंगे।

जीवात्मा को सुखी और समुन्नत कैसे बनाया जा सकता है? यह कई बार बताया जा चुका है और हजार बार बताया जाना चाहिए। उसके सिर्फ दो ही रास्ते हैं। एक रास्ता यह कि मनुष्य शुद्ध और निर्मल जीवन जिये। निर्मल जीवन जीने से आदमी की अपार शक्ति का उदय होता है। आदमी की सारी शक्ति का जो क्षय हो रहा है, वह नष्ट हो रही है, आदमी जो छोटा बना हुआ है, कमीना बना हुआ है, शक्तिहीन बना हुआ है, दुर्बल बना हुआ है, इसका कारण एक ही है कि मनुष्य ने अपनी शारीरिक और मानसिक गतिविधियों को छोटे किस्म का बनाया हुआ है।

अगर आदमी अपनी गतिविधियों को छोटे किस्म का बना कर न रखे, ऊँचे किस्म का बनाकर रखे, अपने आचरण ऊँचे रखे, अपनी इन्द्रियों के ऊपर संयम रखे, अपनी वाणी पर संयम रखे और अपने विचारों पर संयम रखे; तब वह आदमी छोटा नहीं हो सकता। तब आदमी के अन्तरंग में दबी हुई शक्तियाँ दबी हुई नहीं रह सकतीं। मामूली-सा आदमी क्यों न हो, लेकिन उसकी भी वाणी इतनी प्रभावशाली हो सकती है कि मैं क्या कह सकता हूँ? उसका सोचने का तरीका कितना उत्कृष्ट हो सकता है कि मैं उससे क्या कहूँ? आदमी का प्रभाव इतना ज्यादा हो सकता है और आदमी के अन्तरंग में इतनी शान्ति हो सकती है कि उस शान्ति को वह चाहे, तो लाखों मनुष्यों पर बिखेर सकता है। उसकी वाणी में वह सामर्थ्य हो सकती है कि अपनी वाणी के प्रभाव से न केवल मनुष्यों को; बल्कि दूसरे जीव-जन्तुओं को भी प्रभावित कर सकता है।

अगर आदमी अपनी वासना और तृष्णा पर काबू कर ले, तब उसका मस्तिष्क तेज हो जाता है। वह एकान्त में बैठा है, तब भी उसके विचार सारी दुनिया में व्याप्त हो सकते हैं। अगर आदमी अपना जीवन निर्मल जिए। सारी दुनिया के विचारों से टक्कर लेने और उन्हें ऊँचा उठाने में समर्थ हो सकता है।

निर्मल-उदात्त जीवन की ओर

निर्मल जीवन जीने का अर्थ अपने शारीरिक क्रियाकलापों को अच्छा बनाना और अपनी मनोभूमि को परिष्कृत करना है। मन! मन में विचारणाएँ ऊँचे किस्म की हों और शरीर हमारा काम करें; सिर्फ ऊँचे किस्म के काम करे। इन दो गतिविधियों को आप योगाभ्यास कहिये, साधना कहिये, आध्यात्मिक प्रयोजन कहिये। जो आदमी इस काम को कर लेता है, वह स्वयं सब प्रकार से शक्तिशाली हो जाता है और जो शक्तिशाली हो गया है, उस शक्तिशाली मनुष्य के लिए सम्भव है कि अपनी जो क्षमताएँ हैं, उन्हें केवल अपनी उन्नति के लिए सीमाबद्ध न रखे। मनुष्य के अन्तरंग की उदारता जब तक विकसित न हुई, दया जब तक विकसित न हुई, करुणा जब तक विकसित न हुई, आत्मीयता विकसित न हुई, और अपने आप को विशाल भगवान् के रूप में परिणत कर देने की इच्छा उत्पन्न न हुई, तब तक आदमी केवल अपने आपको निर्मल बना करके भी अपूर्ण ही बना रहेगा।

मनुष्य को अपने आप को निर्मल और उदात्त बनाना चाहिए। यही तो आध्यात्मिकता की राह पर चलने वाले दो कदम हैं। कोई भी आदमी आध्यात्मिकता की राह पर चलना चाहता है, तो उसको दोनों ही कदम आगे बढ़ाना है। कोई मंजिल आपको पूरी करनी है, तो लेफ्ट-राइट, लेफ्ट-राइट चलते हुए ही तो मंजिल पार

करेंगे और कोई तरीका दुनिया में नहीं है। अब मैं चाहता हूँ कि लोगों के दिमाग में से वहम निकाल दिये जाने चाहिए। लोगों के दिमाग पर न जाने किन लोगों ने वहम पैदा कर दिया है कि भगवान् का नाम लेने से और उसकी माला जपने से और बार-बार पुकारने से और मंदिर के दर्शन करने से, कथा सुनने से और पंचामृत, पंजीरी खा जाने से, स्तोत्र पाठ करने से मनुष्य की आत्मा को शान्ति मिल सकती है और वह अपनी आत्मिक प्रगति कर सकता है।

यह बिलकुल नामुमकिन बात है। उसके पीछे कोई दम नहीं है। इसके पीछे राई भर सच्चाई नहीं है। इतनी ही राई भर की सच्चाई उसके भीतर है कि आदमी पूजा पाठ करे और भगवान् का नाम ले, ताकि भगवान् का काम जिसको हम भूल गये, उसको हम याद करें, भगवान् के कामों के लिए कदम बढ़ायें। बस इतना ही पूजा-पाठ का मतलब है। अगर हम पूजा-पाठ ढेरों के ढेरों करते रहें और भगवान् की खुशामद करते रहें, भगवान् को जाल में फँसाने के लिए अपनी चालाकियाँ इस्तेमाल करते रहें और ये मानते रहें कि भगवान् ऐसा बेवकूफ आदमी है कि माला घुमाने के बाद में अपना नाम सुनने के बाद में अपनी खुशामद लेकर के और रिश्वत लेकर के हमारे मन चाहे प्रयोजन पूरा कर देगा और हमको भौतिक सम्पदाओं से परिपूर्ण कर देगा और हमको आत्मिक शान्ति दे देगा, तो यह बिलकुल ही नामुमकिन बात है।

भगवान् के स्वरूप को हम समझने में बिलकुल असमर्थ हैं। ये सिर्फ चालाकियाँ हैं। इसके पीछे जो छिपी हुई बात थी, उतनी ही बात छिपी हुई थी कि लोग यह समझ पायें कि भगवान् और जीव का कोई सम्बन्ध है। भगवान् की कोई इच्छा है। मनुष्य के

जीवन के साथ में भगवान् की कुछ प्रेरणाएँ जुड़ी हुई हैं। उन बातों को याद कराने के लिए और उन बातों को स्मरण कराने के लिए ही सारा पूजा-पाठ का, सारे के सारे आध्यात्मिकता का खाँचा जान-बूझकर खड़ा किया गया है। आदमी अपने को कैसा भूला हुआ है? अपने आप को शरीर समझता है, आत्मा अपने आप को नहीं समझता। उसकी याद दिलाने के लिए ये सब कुछ है और इसमें कुछ दम नहीं है। अगर आदमी को यह (ईश्वरीय अनुशासनों का) ध्यान ही न हो, घटिया और कमीना जीवन जिये; खुरा-फात, पूजा-पाठ करके लम्बे-चौड़े ख्वाब देखे, तो उस आदमी को शेखचिल्ली के अलावा और कुछ नहीं कहा जा सकता।

ये जो दो कदम हैं- आत्मा की उन्नति के और मनुष्य जीवन को सफल बनाने के, जिनको मैंने अभी-अभी आपको निर्मल जीवन जीना कहा, उदार जीवन जीना कहा- वह साधना है। साधना निश्चित होती है। उपासना एक छोटा-सा अंग है। जो पूजा की कोठरी में दस-बीस मिनट बैठकर की जा सकती है, लेकिन उपासना तो बीज हुआ। बीज तो थोड़ी देर ही बोया जाता है, पर खेती तो साल भर की जाती है। जो पूजा-पाठ दस-पाँच मिनट किया गया है, उस पूजा-पाठ को सारे जीवन भर चौबीस घंटे अपने जीवन को निर्मल बनाने और परिष्कृत बनाने में खर्च किया जाना चाहिए। यही तो उपासना है, यही तो साधना है।

इस तरह का साधनात्मक जीवन जीने की प्रतिज्ञा जिस दिन ली जाती है। वह दिन ही 'दीक्षा दिवस' होता है। जब मनुष्य अपने उद्देश्य के बारे में खबरदार हो जाता है, सावधान हो जाता है और ये ख्याल करता कि मैं दूसरे लोगों के तरीके से दुनिया के आकर्षणों में, प्रलोभनों में और भ्रमों में फँसने वाला नहीं हूँ, मैं

ऊँचा जीवन जिऊँगा, ऊँचा जीवन जीने के लिए गतिविधियाँ बनाऊँगा, कार्यक्रम बनाऊँगा, योजना बनाऊँगा; जिस दिन वह आदमी संकल्प करता है, समझना चाहिए कि उस दिन उसकी दीक्षा हो गई। उस दिन वह भगवान् से जुड़ गया और अपने उद्देश्यों के साथ में जुड़ गया और महानता के साथ जुड़ गया और जीवन की सफलता की मंजिल प्रारम्भ हो गयी। इस तरह का श्रेष्ठ जीवन और इस तरह का व्रत जिस दिन लिया गया है, समझना चाहिए कि उसी दिन आदमी का नया जन्म हो गया। ये नया जन्म है।

द्विज का अर्थ - मर्म समझें

अपने हिन्दू समाज में जिन मनुष्यों के दो बार जन्म होते हैं। उन्हें द्विज कहते हैं। द्विज माने दुबारा जन्म लेने वाला। दुबारा जन्म क्या है? नर-पशु के जीवन से नर-नारायण के जीवन की भूमिका में प्रवेश करना। यही तो दूसरा जन्म है और ये दूसरा जन्म जिस दिन लिया जाता है, जिस दिन ये प्रतिज्ञाएँ ली जाती हैं, उस दिन एक समारोह मनाया जाता है, उत्सव मनाया जाता है, कर्मकाण्ड किया जाता है। उसी का नाम 'दीक्षा संस्कार' है। जो आदमी इस तरह की प्रतिज्ञा के लिए तैयार नहीं होते हैं और वे कहते हैं कि ऊँचे जीवन और आदर्श जीवन से कोई मतलब नहीं रखते हैं, वे कहते हैं कि हम तो केवल पशुओं की तरह से जीवन जियेंगे। हम पेट भरने के लिए जीयेंगे और संतान पैदा करने के लिए जीयेंगे, उनको अपने यहाँ शूद्र कहा गया और शूद्रों को बहिष्कृत माना गया है। इस तरीके से शूद्र वे नहीं हैं, जो किसी जन्म में, किसी कौम में पैदा होते हैं। शूद्र वे हैं, जिनके जीवन में जीवन का कोई लक्ष्य नहीं होता है और जिनका पशुओं की तरह पेट पालना और रोटी कमाना ही लक्ष्य

है। वे सब के सब आदमी शूद्र हैं, दूसरे शब्दों में पशु कहें, तो भी कोई हर्ज नहीं है। उसको बहिष्कृत माने जाने की परम्परा उस जमाने में उसी तरह की थी।

आज तो जन्म से शूद्र और जन्म से ही ब्राह्मण मानते हैं। जन्म से शूद्र वर्ण का कोई मतलब नहीं है। केवल मतलब ये है कि जो आदमी भौतिक जीवन जीते हैं और आत्मिक जीवन के प्रति जिनका कोई लगाव नहीं है, उन आदमियों का नाम नर-पशु अथवा शूद्र। शूद्र अपने यहाँ एक निंदा की बात थी, किसी जमाने में, कर्म के आधार पर जब शूद्र और ब्राह्मण बनते थे तब। आज जब जन्म के आधार पर शूद्र और ब्राह्मण मान लिया जाने लगा, तब कोई निंदा की बात नहीं रही और न ही कोई अपमान की बात रही। अब तो सब गुड़-गोबर ही हो गया; लेकिन पुराने जमाने की बात अलग थी। मनुष्य शूद्रता की सीमा से निकल करके जिस दिन ये प्रतिज्ञा लेता है, व्रत लेता है कि मैं आज से मनुष्य होकर के जिऊँगा; उस दिन का समारोह? आत्मा और परमात्मा के साथ मिलने का विवाह जैसा समारोह होता है। उस दिन को मनुष्य जीवन में प्रवेश करने वाला नया जन्म कह लीजिए, उसे आत्मा का परमात्मा के साथ आध्यात्मिक विवाह कह लीजिए।

जन्म भी अपने यहाँ हँसी-खुशी का त्यौहार माना जाता है और विवाह भी। ये दोनों ही कार्य जिस दिन एक साथ होते हैं, वह आदमी का बड़ी खुशी का दिन है, बड़े उत्सव का दिन है, बड़ी शान का दिन है, बड़ा गौरव का दिन है और वह दिन दीक्षा का दिन है। दीक्षा एक तरह की कसम लेने की प्रक्रिया है। जिस तरीके से कोई मिनिस्टर बनता है जब, तब उसको न्यायाधीश अथवा राष्ट्रपति आते हैं, उसको प्रतिज्ञाएँ दिलाते हैं, उसको गोपनीयता की शपथ

दिलाते हैं, देश भक्ति की शपथ दिलाते हैं। मैं देश भक्त होकर के जिऊँगा और जो गोपनीय बातें हैं उनको बाहर प्रकट नहीं होने दूँगा। ये दो बातें राजनीतिक मनुष्यों को शपथ के रूप में लेनी पड़ती हैं, जो ये शपथ नहीं ले, उसको मिनिस्टर नहीं बनाया जा सकता। ठीक इसी प्रकार से दीक्षा यह शपथ लेने का समारोह है कि मैं मनुष्य का जीवन जीऊँगा।

महत्त्व उस शपथ के भावनात्मक सम्बन्ध का है। संस्कार कराने की विधि तो कोई सामान्य आदमी भी पूरा कर सकता है, ये कोई बड़ी बात है क्या? विवाह स्त्री-पुरुषों का होता है। पण्डित जी पगड़ी बाँध के आ बैठते हैं, उनको दक्षिणा दे देते हैं, वे श्लोक बोल देते हैं, परिक्रमा करा देते हैं और पण्डित जी मिठाई खा करके, पूड़ी खा करके घर से चले जाते हैं। पण्डित जी का ब्याह में कोई खास भाग नहीं है। बस थोड़ी देर के लिए भाग है।

इस तरीके से गुरु-दीक्षा का कृत्य-कर्मकाण्ड कोई भी आदमी करा सकता है, उस आदमी का कोई मूल्य नहीं है। वास्तविक बात यह है कि आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ने भर की बात है। सद्गुरु जिसको कहते हैं। वह अन्तरंग में बैठा हुआ चेतना-प्रेरणा का नाम है, जो मनुष्य को दिशाएँ बताती है, हर वक्त मार्गदर्शन करती है। बाहर का गुरु तो केवल ढाँचे के तरीके से, खाके के तरीके से और सिगनल के तरीके से सिर्फ आरम्भिक रास्ता बता सकता है। चौबीस घंटे रास्ता कैसे बता सकता है कोई गुरु? **ॐ गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णुः, गुरुरेव महेश्वरः** ..... में जो बात बताई है, वह मनुष्यों के ऊपर कैसे लागू हो जायेगी?

कोई सामान्य मनुष्य ब्रह्मा कैसे हो सकता है? कोई सामान्य मनुष्य विष्णु कैसे हो सकता है? कोई सामान्य मनुष्य महेश कैसे

हो सकता है? इतनी जो महत्ता और महिमा बताई गई है, वह अंतरंग में बैठे हुए उस भगवान् के लिए है। सद्गुरु शब्द केवल भगवान् के लिए काम आता है, मनुष्यों के लिए नहीं आता। गुरु तो जरूर मनुष्यों के लिए आता है, लेकिन सद्गुरु सम्बोधन कभी मनुष्य के लिए काम में नहीं आ सकता, वह सिर्फ भगवान् के लिए काम आयेगा। उस भगवान् के लिए जो हमारे अन्तरंग में बैठा हुआ प्रेरणा दिया करता है।

सद्गुरु के साथ अपनी जीवात्मा का सम्बन्ध जोड़ लेना- यही गुरु दीक्षा है। गुरु दीक्षा जब होती है, तो हमको गायत्री मंत्र दिया जाता है। ये सिम्बल है, ये सहारा है। पहाड़ पर चढ़ने के लिए हाथ में लाठी जिस तरीके से दी जाती है, उस तरीके से ये लाठी है- महानता के मार्ग पर चलने के लिए। गायत्री मंत्र की शिक्षाओं में कितना मूल्य भरा हुआ है। मनुष्य को सविता के समान तेजस्वी होना चाहिए और वरेण्य-श्रेष्ठ होना चाहिए, ऐसी कितनी विशेषता उसमें भरी पड़ी है। अंत में ये कहा गया है- **धियो यो नः प्रचोदयात्।** इनसान की इस दुनिया में अक्ल को बहकाने वाले बहुत साधन भरे पड़े हैं। हमारे कुटुम्बी हमारी अक्ल को बहकाते हैं और हमारे खानदान वाले हमारी अक्ल को बहकाते हैं और हमारे लोग ही हमारी अक्ल को बहकाते हैं और समाज के लोग अक्ल को बहकाते हैं। जितनी भी दुनिया में चालाकियाँ और जाल भरे पड़े हैं, आदमी की अक्ल को बहकाते हैं। अक्ल को बहकाया नहीं जाना चाहिए। इस तरह का शिक्षण, इस तरह का इशारा, इस तरह का सिगनल और इस तरह का जिस मंत्र के द्वारा, जिस प्रेरणा के द्वारा, जिस प्रकाश के द्वारा, हमको मार्गदर्शन दिया गया है, उसका नाम गायत्री मंत्र है।

दीक्षा के अंग-उपअंग

गुरु-दीक्षा के साथ गायत्री मंत्र हमको दिया जाता है और इस ख्याल से दिया जाता है कि इसका जप भी किया जायेगा, ध्यान भी किया जायेगा। जप और ध्यान करने के साथ-साथ में इसके अंदर जो शिक्षण भरा हुआ पड़ा है, जो दिशाएँ भरी हुई पड़ी हैं, उन दिशाओं को भी ध्यान में रखा जायेगा। बस यही गुरुदीक्षा का मतलब है।

मंत्र दीक्षा- दोनों हाथों के अँगूठे आपस में मिला लिये जाने चाहिए। कंधे और कमर को सीधे रखा जाना चाहिए। अपने अँगूठों के ऊपर निगाह रखी जानी चाहिए और ध्यान किया जाना चाहिए। भगवान् की प्रेरणा और भगवान् का प्रकाश अब हमारे अन्तरंग में आता है। जो आदमी गुरु दीक्षा करायें। मंत्र को स्वयं धीरे-धीरे बोलना चाहिए और जो आदमी बैठे हुए हैं, उनसे दोहराने के लिए कहना चाहिए और यह कहना चाहिए कि आप लोगों को ध्यान सिर्फ अँगूठे पर रखना है और जिस तरीके से कहा जा रहा है, उस तरीके से गायत्री मंत्र कहना चाहिए।

गुरु-दीक्षा का संस्कार कराने वाले टुकड़े-टुकड़े में गायत्री मंत्र कहें और बाकी लोग जो बैठे हुए हैं, उसको दोहराएँ। **ॐ भूर् भुवः स्वः तत् सवितुर् वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।** इतने शब्दों को गुरु-प्रतिनिधि इस तरीके से कहें। उसके बीच में जब रुकने का समय आता है, दूसरे दीक्षा लेने वाले लोग उसको उसी तरीके से दोहराएँ अर्थात् एक टुकड़ा गायत्री मंत्र का दीक्षा संस्कार कराने वाला व्यक्ति कहे और बाकी उसी टुकड़े को उसके बाद के लोग कहें। बस इस तरह से कहने के बाद में जल के छीटे उनके ऊपर लगा दिये जाएँ और यह कहा जाए कि आपके

अंदर पाप की जो आग जल रही थी, तृष्णा की जो आग जल रही थी, वासना की जो आग जल रही थी, इन मंत्रों के द्वारा उसको शांत किया जा रहा है। पानी के पात्र लेकर के लोग खड़े हो जाएँ और जो व्यक्ति अँगूठे को मिलाए हुए, निगाह लगाये हुए बैठे थे, उन सबके ऊपर जल के छीटे लगाये जाएँ और दीक्षा देने वाला व्यक्ति शांति पाठ करता जाए- **ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः, पृथिवी शान्तिरापः, शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः, शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः, सर्वँशान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः, सा मा शान्तिरेधि॥** इन मंत्रों के साथ पानी के पात्र लिये हुए लोग पानी के छींटे सब पर लगाते जाएँ और दीक्षा लेने वालों को कहें कि आप हाथ खोल लीजिए, आपकी दीक्षा का कृत्य समाप्त हो गया। ये दीक्षा का कृत्य हुआ।

यज्ञोपवीत धारण- इसी तरीके से यज्ञोपवीत जिन लोगों ने लिया है, उन यज्ञोपवीत लेने वालों को बायें हाथ पर यज्ञोपवीत रखना चाहिए और दाहिने हाथ से इसको ढँक लेना चाहिए और ये ध्यान करना चाहिए कि हम इसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, यज्ञ भगवान् और सूर्य नारायण, इन पाँच देवताओं का आवाहन कर रहे हैं और ये पाँच शक्तियाँ, पाँच तत्त्व जिनसे हमारा शरीर बना हुआ है, इन पाँच तत्त्वों की अधिनायक हैं। पाँच हमारे प्राण हैं और हमारे सूक्ष्म शरीर की पाँच प्रक्रियाएँ मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और जीवात्मा- ये पाँचों देवता माने गये हैं। पाँच शरीर में रहने वाले पाँच तत्त्वों को भी पाँच देवता माना गया है। इन शारीरिक और आध्यात्मिक पाँच देवताओं को यज्ञोपवीत में बुलाते हैं और ये ख्याल करते हैं कि ये यज्ञोपवीत में सारे जीवन भर हमारे साथ में रहा करेंगे।

बायें हाथ पर यज्ञोपवीत रखा और दाँयें से ढका और आँखें बंद की और ध्यान किया कि इसमें ब्रह्मा की उत्पादक शक्ति यज्ञोपवीत में प्रवेश कर रही है और यज्ञोपवीत कराने वाले सज्जन ब्रह्मा जी के आवाहन का मंत्र बोलें- **ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्, विसीमतः सुरुचो वेनऽ आवः। सऽबुध्न्या उपमाऽ अस्यविष्ठाः, सतश्च योनिमसतश्च विवः। ॐ ब्रह्मणे नमः।** पुष्पाक्षत को सिर पर लगा लिया जाये और ध्यान किया जाए, ब्रह्मा जी हमारे इस यज्ञोपवीत में निवास करने के लिए विराजमान हुए।

अब इसके बाद में फिर ध्यान किया जाय कि विष्णु भगवान् इस यज्ञोपवीत में आये और विष्णु भगवान् ने इस यज्ञोपवीत में निवास करना शुरू किया। संस्कार कराने वाले सज्जन ये मंत्र बोलें- **ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे, त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पा ँ सुरे स्वाहा॥ ॐ विष्णवे नमः।** मस्तक से हाथ लगा लिया जाए। ये ध्यान किया जाए कि विष्णु भगवान् हमारे इस यज्ञोपवीत में आये। अब इसके बाद शंकर भगवान् का ध्यान किया जाए और ये विश्वास किया जाए कि इस संसार की संहारक-संरक्षक और नियंत्रण में रखने वाली शक्ति हमारे इस यज्ञोपवीत में आयी और यहाँ आकर विराजमान हुई। संस्कार कराने वाले को ये मंत्र बोलना चाहिए- **ॐ नमस्ते रुद्र मन्यवऽ, उतो त ऽ इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः। ॐ रुद्राय नमः।** मस्तक पर हाथ लगा लिया जाए, ध्यान किया जाए कि शंकर भगवान् हमारे इस यज्ञोपवीत में आए।

अब इसके बाद में यज्ञोपवीत को खोल दिया जाए और खोल करके अँगूठा, उँगली और दोनों हाथ के अँगूठे और उँगली के बीच में यज्ञोपवीत को फँसा दिया जाए। इस तरीके फँसाया जाए कि हथेली पर होकर के जनेऊ के धागे निकलते रहे और हाथ से

इनको चौड़ा कर लिया जाए और हाथों को चौड़ा कर किया जाए और सीने के बराबर रखा जाए। ध्यान किया जाए कि यज्ञ नारायण इस यज्ञोपवीत में विराजमान हो रहे हैं। इस तरीके से यज्ञ नारायण के आवाहन का मंत्र बोला जाए- **ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः, तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त, यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥ ॐ यज्ञ नारायणाय नमः।** अब इसके बाद में सूर्य नारायण का आवाहन करने के लिए दोनों हाथों को ऊपर उठा दिया जाए। आँखें बंद कर ली जाएँ और ध्यान किया जाए कि हमारे इस यज्ञोपवीत में जो ऊपर तना हुआ है, इसमें सूर्य नारायण की शक्ति का आवाहन हो रहा है और यह मंत्र बोला जाए- **ॐ आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो, निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेना, देवो याति भुवनानि पश्यन्॥ ॐ सूर्याय नमः।**

इस तरीके से पाँच देवताओं का आवाहन करने के बाद पाँच व्यक्ति इन पाँच देवताओं के प्रतीक या प्रतिनिधि होकर अथवा पाँच संसप्त जो शरीर में बने हुए उनके प्रतीक या प्रतिनिधि होकर व्यक्ति खड़े हो जाएँ और जिनको गायत्री मंत्र आता हो, यज्ञोपवीत पहनाने का मंत्र आता हो, उनको यज्ञोपवीत हाथ में ऊपर से ले लेना चाहिए। यज्ञोपवीत लेने वाले का दाहिना हाथ ऊपर रखवाना चाहिए और बायाँ हाथ नीचे कर देना चाहिए और पाँचों व्यक्ति को मिलाकर उसके बायें कंधे पर यज्ञोपवीत को धारण कराना चाहिए। यज्ञोपवीत धारण कराने के समय ये मंत्र बोला जाए- **ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं, प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं, यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः।** इस तरीके से यज्ञोपवीत पहना दिया जाए। बस यज्ञोपवीत संस्कार पूरा हो गया। यज्ञोपवीत संस्कार कराने के बाद यज्ञोपवीतधारी जिन्होंने यज्ञोपवीत लिये

हैं, ये सिखाया जाना चाहिए कि यज्ञोपवीत के उद्देश्य क्या हैं और कर्त्तव्य क्या हैं ?

उद्देश्य- यज्ञोपवीत के दो उद्देश्य हैं- पहला उद्देश्य ये है कि भगवान् का प्रतीक और प्रतिनिधि यज्ञोपवीतरूपी धागा अपने बाएँ कंधे पर स्थापित करके आदमी को ये अनुभव करना चाहिए कि मेरा शरीर अब मंदिर के तरीके से हो गया। पाँचों देवताओं का प्रतीक सम्मिश्रित यज्ञोपवीत अर्थात् भगवान् की शक्तियों का समन्वय यज्ञोपवीत मेरे कंधे पर विराजमान है और भगवान् ने जो जिम्मेदारियाँ मेरे कंधे पर रखी हैं इस मनुष्य के जीवन को देकर के, मैं उन जिम्मेदारियों को निभाऊँगा। यज्ञोपवीत पहनने वाले को ये भाव रखना चाहिए कि मेरे हृदय के ऊपर भगवान् टँगे हुए हैं। यज्ञोपवीत के रूप में मेरा हृदय ऐसा होना चाहिए, जैसे भगवान् का है। वैसे मनुष्य का भी होना चाहिए। हृदय के अंदर करुणा होनी चाहिए, हृदय के अंदर निर्मलता होनी चाहिए। हृदय के अंदर दुर्भावनाओं और दुष्प्रवृत्तियों के लिये कोई स्थान नहीं होना चाहिए और यज्ञोपवीत पहनने वाले को ध्यान रखना चाहिए कि मेरा कलेजा अर्थात् प्यार करने का स्तर।

कहते हैं कि हमारे कलेजे में ये आदमी समा गया है और हमारे कलेजे में ये बात चुभ गयी है। ये बात मुहावरे के रूप में प्यार का अर्थ समझाती है। कलेजा अर्थात् प्यार। हम भगवान् को सर्वतोमुखी प्यार करते हैं और यज्ञोपवीत को पीठ के ऊपर रखा जाता है और ये ध्यान किया जाता है और ये विश्वास किया जाता है कि भगवान् हमारे पीठ पर विराजमान हैं। हमको श्रेष्ठ मार्ग पर चलने के लिए प्रेरणा देंगे और भगवान् के वाहन को जिस तरीके से होना चाहिए, मैं उसी तरीके से बनकर रहूँगा।

भगवान् का वाहन गरुड़ और गायत्री माता का वाहन हंस। मैं गरुड़ के तरीके से साँपों को खाने वाला और श्रेष्ठ निर्मल भगवान् की भक्ति से ओत-प्रोत रहूँगा। साँपों को खाऊँगा, साँपों (दोषों) को जिन्दा नहीं रहने दूँगा और हंस नीर और क्षीर का विवेक करने वाला। पानी नहीं पियेगा, दूध ही पियेगा, मोती ही खायेगा, कीड़े नहीं खायेगा। हंस सफेद ही रहेगा, काला-कलूटा धब्बेदार नहीं रहेगा। यही तो हंस है। अनुभव करना चाहिए कि हम गायत्री माता के हंस हैं और हमारी पीठ के ऊपर गायत्री माता सवार हैं- यज्ञोपवीत के रूप में। ये विश्वास अगर आदमी कर सके, तो यज्ञोपवीत धारण करने का पहला उद्देश्य पूरा हो जाये और फिर आदमी चारों ओर अपने-आप को भगवान् से लपेटा हुआ अनुभव करने के बाद में बुरे काम न करे और बुरे कामों से डर जाए और अपने अंदर की दुष्प्रवृत्तियों को हटाये।

यज्ञोपवीत का दूसरा उद्देश्य यह है कि हमारे गले में धर्म का रस्सा बँधा हुआ है। हम धर्म बंधनों से बँधे हुए हैं और हम मर्यादाओं से बँधे हुए हैं और हम जिम्मेदारियों से बँधे हुए हैं और हम राष्ट्रीय और सामाजिक और नैतिक उत्तरदायित्वों से बँधे हुए हैं। उच्छृंखल हम नहीं हैं। जिस तरह से पशु के गले में रस्सा बाँध देते हैं और रस्सा बाँधने के पीछे यह विश्वास करते हैं कि यह जो रस्सा है, हमको सत्कर्मों के जंजीरों से बाँधे हुए हैं। ऐसा मनुष्य उच्छृंखल नहीं बनता है, अनुशासनहीन नहीं बनता। मनचाही बात नहीं कहता, सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करता। उसके गले में रस्सा बाँधा हुआ है।

नियम- ये दो उद्देश्य यज्ञोपवीत के और पाँच नियम यज्ञोपवीत के। **पहला** नियम यह है- प्रत्येक यज्ञोपवीत पहनने वाले

आदमी को-दीक्षा लेने वाले आदमी को कम से कम एक माला का जप अर्थात् छः मिनट गायत्री मंत्र का जप करना ही चाहिए। **नम्बर दो-** पेशाब-टट्टी के लिए जाए, तो कान के ऊपर जनेऊ को चढ़ा लिया जाए। हाथ धोकर के जनेऊ को उतारा जाए। हाथ धोने के लिए पानी न हो, तो मिट्टी से हाथ माँज लिया जाए। मिट्टी भी न हो, पानी भी न हो, तो सूरज की धूप और हवा में पाँच बार हाथों को हिलाकर कर जनेऊ उतार सकते हैं। **तीसरा** नियम ये है- कोई धागा खण्डित हो जाए या ६ महीने पुराना हो जाए, घर में किसी बच्चे का जन्म या मृत्यु हो जाए, तो पुराना जनेऊ उतार देते हैं और नया जनेऊ पहन लेते हैं। **चौथा** नियम यह है- जब साबुन लगाना हो, तो थोड़ा-थोड़ा हिस्सा करके साबुन लगाना चाहिए और उसको शरीर से बाहर नहीं निकालना चाहिए। शरीर से बाहर जब जनेऊ को निकाल देते हैं, तो यह बेकार हो जाता है फिर नया जनेऊ पहनना पड़ता है। इसलिए थोड़े-थोड़े हिस्से को साबुन लगाना चाहिए। उसको वहीं सफाई कर लेनी चाहिए। **पाँचवाँ** नियम यह है कि इसमें चाबी के गुच्छे वगैरह नहीं बाँधना चाहिए। बस, यज्ञोपवीत के पाँच नियम और दो उद्देश्य हैं- यज्ञोपवीत धारण करने वाले व्यक्ति जब दीक्षा लें, उस समय उन्हें कुछ नियम और प्रतिज्ञाएँ लेनी चाहिए।

प्रगति के कदम-प्रतिज्ञाएँ

दो कदम जीवन की उन्नति और प्रगति के लिए हैं। उनमें से एक-एक कदम उसी समय बढ़ा लेना चाहिए

१- पाप घटाएँ- विचार करना चाहिए कि हमारे शारीरिक-मानसिक और आध्यात्मिक पाप क्या-क्या हैं? और जो पाप अब तक हम करते रहे हैं ? उनमें से एक पाप को छोड़ ही देना चाहिए।

शारीरिक पापों में मैं हमेशा ऐसे तीन पापों को प्रमुखता देता रहा हूँ। एक पाप-मांस खाना। मांस खाना मनुष्यता के विरुद्ध है। हृदयहीन मनुष्य ही मांस खा सकता है। हृदयवान् व्यक्ति और दयावान व्यक्ति मांस नहीं खा सकता है। इसीलिए मांस खाना छोड़ना चाहिए। दूसरे पाप भी इसी तरह के हैं, जो मनुष्य को खोखला बनाते हैं। मनुष्य को शारीरिक, मानसिक और आर्थिक स्थिति से कमजोर करते हैं, आदमी को इससे कुछ फायदा नहीं है। नशे की बात और मांसाहार की बात, व्यभिचार की बात, स्त्रियों को पतिव्रता होना चाहिए और पुरुषों को पत्नीव्रत होना चाहिए।

शारीरिक पाप ! शारीरिक पापों में समय का दुरुपयोग करना और आलसी आदमी के तरीके से पड़ा रहना। आलस्य एक बहुत बुरे किस्म का पाप है। इससे समाज का उत्पादन घटता है, मनुष्य की क्षमताएँ नष्ट होती है और समय का अपव्यय होता है। एक-एक साँस और एक-एक क्षण भगवान् ने जो हमको जीवन हीरे और मोतियों के तरीके से दिया है, उन्हें हम पैरों के तले रौंद डालते हैं और हम आलसी के तरीके से जीते हैं और समय का अपव्यय करते हैं।

हममें से हर आदमी को आलस्यरहित होना चाहिए। दिनचर्या बनाकर चलना चाहिए और काम करना चाहिए। हमारे स्वभाव के बहुत सारे दोष और दुर्गुण हैं। इसमें खास तौर से क्रोध करना और आवेश में आ जाना, दूसरों को कड़वे वचन कह देना और बेकाबू हो जाना। ये तो बुरी बात है और आदमी का लोभ उतना करना, जिससे कि सारे के सारे अपने धन और क्षमता को केवल अपने शरीर व अपने कुटुम्ब के लिए खर्च करे। जिसकी ये हिम्मत न पड़े कि हमको समाज के लिए खर्च करना चाहिए और समाज के लिए अनुदान देना

चाहिए। ऐसे आदमी को लोभी, कंजूस और कृपण कहा जाता है। आदमी को कृपण, कंजूस और लोभी नहीं होना चाहिए।

समाज के प्रति व्यक्ति को उत्तरदायित्वों को पूरा करना चाहिए। काम वासना का अर्थ है कि नारियों के प्रति और दूसरे लिंग के प्रति, मनुष्य को दुर्भावनाएँ और पापवृत्तियाँ नहीं रखनी चाहिए। स्त्रियाँ हैं तो क्या? पुरुष हैं तो क्या? इनसान तो हैं। इनसान, इनसान के प्रति अच्छे भाव रखे। उनमें सरसता के भाव रखे, तो इसमें क्या बुरा है? काम वासना की बात सोचे, ये क्या बात है? स्त्री है, इसका मतलब कि ये सिर्फ काम-वासना के ही लिए है क्या? हमारी माँ भी तो स्त्री है, बहिन भी तो स्त्री है, हमारी बेटी भी तो स्त्री ही है। क्या हम काम-वासना के भाव रखते हैं? स्त्री-पुरुष के बीच एक काम-वासना का ही रिश्ता है क्या? नहीं, ये बहुत बुरी बात है। दिमाग में काम-वासना के विचारों को रखे रहना और क्रोध का आचार, बात-बात में आवेश में आ जाना, दूसरों की गलतियों के ऊपर आपे से बाहर आ जाना ठीक नहीं।

दूसरों में गलतियाँ हैं। ये कौन नहीं कहता? लेकिन दूसरों की गलतियों को प्रेम से सुधारा जाना चाहिए, उनको बताया जाना चाहिए, उसको संतुलित होकर के ठीक किया जाना चाहिए। नहीं होता, तो बिलकुल दिल में नहीं रखना चाहिए, आवेश में नहीं आना चाहिए। बात-बात में गुस्से की क्या बात है? काम, क्रोध, लोभ और केवल एक कुटुम्ब से, एक घर से, एक शरीर से अपनापन जोड़ लेना, इसको मोह कहते हैं। आदमी एक शरीर से क्यों जुड़ा हुआ रहे? सभी शरीरों में अपनी आत्मा को समाया हुआ क्यों नहीं देखे। सारे समाज को एक कुटुम्ब क्यों नहीं माने? चंद आदमियों को ही कुटुम्ब क्यों माने? इस तरीके से ये संकीर्णता की भावना को मोह कहते हैं और

ये काम, क्रोध, लोभ और मोह मानसिक विकार हैं और ये मानसिक पाप कहे जाते हैं। इससे आदमी को अपने आपको उठाना चाहिए।

हराम की कमाई खाना भी एक बहुत बड़ा पाप है। बिना परिश्रम किये आप क्यों खायें? आपने मजदूरी करने के लिए प्रतिज्ञा की है, पूरी मजदूरी क्यों नहीं करें? पूरी मजदूरी का अर्थ है- पसीने की कमाई खानी चाहिए और हराम का पैसा नहीं ही खाना चाहिए। आज कल जुआ खेलने का रिवाज, सट्टा खेलने का रिवाज, लॉटरी लगाने का रिवाज बहुत बुरी तरह से बढ़ रहा है और बाप-दादों की हराम की कमाई उत्तराधिकार में खाने का रिवाज भी बुरी तरह से बढ़ रहा है। इन बुरे रिवाजों को बंद करना चाहिए। आदमी को सिर्फ अपनी मेहनत- मशक्कत की कमाई खानी चाहिए।

बिना मेहनत- मशक्कत की कमाई क्यों खायें? लॉटरी २० रुपये की लगायी और पाँच लाख रुपये मिल जाए। ये क्या बात हुई? फिर आदमी की परिश्रम की कीमत क्या रही? आदमी की मेहनत क्या रही? न कोई मेहनत, परिश्रम करके फोकट में ही पैसा मिल जाता है, तो फिर परिश्रम को साथ-साथ में क्यों जोड़ा जाए? परिश्रम का मतलब ही तो पैसा होता है और पैसा किसे कहते हैं? आदमी की शारीरिक और मानसिक मेहनत का नाम पैसा है। बात ठीक है, यहाँ तक अर्थ सिद्धान्त सही है। लेकिन जो बिना पैसे का है, जब कभी पैसा मिलता है, तो ये मानना चाहिए कि अर्थ सिद्धान्त जिसके लिए पैसे का निर्माण किया गया था; उन सिद्धान्तों को ही काट दिया गया। जुआ खेलना, लॉटरी लगाना, सट्टा खेलना ये हराम की कमाई है। उसको नहीं किया जाना चाहिए।

इसी प्रकार के अपने सामाजिक पाप अपने हिन्दू समाज में न जाने कहाँ से कहाँ भरे पड़े हैं। अपने समाज में अन्धविश्वासों का बोलबाला है। इसमें से सामाजिक कुरीतियों में आपने देखा होगा, वर्ण व्यवस्था का विकृत रूप। जन्म से आदमी ब्राह्मण और जन्म से आदमी शूद्र। ये क्या जन्म से क्यों ? कर्म से क्यों नहीं? कर्म से आदमी ब्राह्मण होना चाहिए, कर्म से शूद्र होना चाहिए। लेकिन लोग जन्म से मानने लगे हैं। ये कैसी ये अंधविश्वास की बात है? और कैसी अंधविश्वास की बात है कि स्त्रियों के ऊपर ऐसे बंधन लगाये जाते हैं, उनको पर्दे में रहना चाहिए। पुरुषों को क्यों पर्दे में नहीं रहना चाहिये? नहीं, स्त्रियों के सिर की रक्षा की जानी चाहिए। फिर पुरुषों के सिर की रक्षा क्यों नहीं की जानी चाहिए? पुरुषों के सिर की रक्षा की जानी चाहिये। उनको भी घूँघटों में बंद किया जाना चाहिए। उनको भी घर में बंद किया जाना चाहिए। कोई स्त्री देख लेगी, तो उसका सिर खराब हो जाएगा। स्त्री के ऊपर सिर की रक्षा, पुरुषों के ऊपर नहीं, बिलकुल वाहियत बात है। ऐसी बात है जिसमें अन्याय की गंध आती है। इसमें बेइंसाफी की गंध आती है, आदमी की संकीर्णता की गंध आती है।

अब अपने समाज में ब्याह-शादियों का जो गंदा रूप है, वह दुनिया में सबसे खराब और सबसे जलील किस्म का है। ब्याह करे और आदमी रुपया-पैसा फूँके और दहेज दे। क्या मतलब? जिस कन्या को पिता दे रहा है, उससे बड़ा अनुदान और क्या हो सकता है? नहीं साहब, उसके साथ कुछ और लाइए। क्यों लायें? बेटी हम दे रहे हैं, तुम लाओ। बेटे वाले को बेटी वालों के लिए पैसे लाने की बात हो, तो समझ में भी आती है; लेकिन बेटी वाला लड़की भी देगा, पैसा भी देगा और खुशामद भी करेगा। ये बिलकुल गलत तरीके का रिवाज है।

२-पुण्य बढ़ाएँ- ठीक इसी तरीके से बाप-दादा की मृत्यु हो जाए, घर में किसी की मृत्यु हो जाए, दावत खाई जाए। ये क्या वाहियात है? घर में जिसकी मृत्यु हो गई है तो सहायता की जानी चाहिए, उसकी आर्थिक स्थिति को मजबूत किया जाना चाहिए, उसकी हिम्मत बढ़ाई जानी चाहिए। घर में बेचारे के यहाँ दो मन अनाज है, उसको भी खा-पी करके, उसको भी दावत उड़ा करके मूँछों पर ताव दे करके भाग जाना चाहिए। ये जलील रिवाज है और हमारा समाज सब जलील रिवाजों से भरा हुआ पड़ा है। इस तरह के रिवाज जिनकी ओर मैंने आपको इशारा किया था। हमको देखना चाहिए कि हमारी बिरादरी, हमारी कौम और हमारे समाज में क्या-क्या सामाजिक बुराइयाँ हैं? उनमें से कोई न कोई छोड़ी ही जानी चाहिए।

इसी तरह से कोई एकाध अच्छाई इसी दीक्षा के समय में सीख लेनी चाहिए। अच्छाइयों में से एक अच्छाई ये है कि हम में से हर आदमी को गायत्री मंत्र का जप करना और भगवान् पर विश्वास करना आना चाहिए। भगवान् की पूजा के साथ भगवान् पर विश्वास बहुत सख्त जरूरी है। बहुत से मनुष्य ऐसे हैं, जो पूजा तो करते हैं, पर भगवान् पर विश्वास बिलकुल नहीं करते हैं । भगवान् पर विश्वास करते, तब उनको पाप करने की इच्छा क्यों होती? भगवान् पर विश्वास कर लिये होते, तो बात-बात में रोते-चिल्लाते, डरते और कमजोर होते क्यों? हानि जरा-सी हो जाती और आपे से बाहर हो जाते हैं, ये क्यों होता? भगवान् पर विश्वास करने वाला ऐसा नहीं कर सकता है। बड़ा धीर, वीर और गंभीर होता है। भगवान् पर विश्वास तो आदमी को होना चाहिए। भगवान् का पुजारी हो, तो वो भी अच्छी बात है। उसको मैं आस्तिक कहता

हूँ। आस्तिकता को अपने मन में धारण करने वाली बात हर आदमी को करनी चाहिए। ये अच्छाई दीक्षा के समय ग्रहण की जानी चाहिए।

इसी प्रकार से आदमी को एक और बात शुरू करनी चाहिए कि हम अपनी संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण अंग जो बहुत छोटा है, उसको हम पालन किया करेंगे, पूरा क्रिया करेंगे। एक महत्त्वपूर्ण अंग ये है कि हमको अपने बड़ों की-बुजुर्गों की इज्जत करनी सीखना चाहिए। मैं उनकी हर बात मानने के लिए नहीं कहता। जो बात मुनासिब नहीं है, बिलकुल नहीं मानना चाहिए। लेकिन बड़ों की इज्जत जरूर करनी चाहिए। बड़ों के पैर छूना चाहिए। सबेरे उठना चाहिए। ये हमारी शालीनतापरक प्रक्रिया है। इससे परिवारिक वातावरण अच्छा होता है। छोटे और बड़ों के बीच प्रेम भाव पैदा होता है। परिवार प्रणाली में जहाँ जरा-जरा सी बात के ऊपर बार-बार मोह-मालिन्य पैदा होते रहते हैं, वह इससे दूर हो जाते हैं और हमारे बच्चों को ये सीखने का मौका मिलता है कि हमको बड़ों की इज्जत करना चाहिए।

अगर हम पिताजी, माताजी, बड़े भाई, चाचाजी सबके पैर छूयेंगे, तो हमारे छोटे बच्चे भी वैसा अनुकरण करेंगे और हमारे घर में श्रेष्ठ परम्पराएँ पैदा हो जायेंगी। इस तरीके से कोई न कोई काम करना चाहिए और कोई अच्छाई शुरू करनी चाहिए, कोई बुराई दूर करनी चाहिए। यही गायत्री मंत्रदीक्षा की गुरु दक्षिणा है और यही यज्ञोपवीत पहनने की गुरु दक्षिणा है। इस तरह की प्रतिज्ञा की जानी चाहिए। साधक को मन ही मन में ये भाव करना चाहिए कि मन में अमुक बुराई जो हमारे भीतर अब तक थी, उस बुराई को हम त्याग कर रहे हैं और अमुक अच्छाई जो हमारे भीतर नहीं थी, उसको हम प्रारम्भ कर रहे हैं। बहुत सी अच्छाइयाँ हैं- दया करना,

प्रेम करना, समाज की सेवा करना, क्या-क्या हजारों अच्छाइयाँ हैं। कम से कम एक अच्छाई कि हम बड़ों के पैर छूआ करेंगे, स्त्री अपने पति और सास के पैर छूआ करें और पुरुष अपने भाई और बहिन और माता-पिता और चाचा-ताऊ और बड़ा भाई, बड़ी भाभी के पैर छूआ करेंगे। हमारे घर में उत्तम और श्रेष्ठ परम्पराएँ कायम हों।

दक्षिणा संकल्प- इसके बाद में दाहिने हाथ पर चावल, फूल और जल लेकर के जो संस्कार कराने वाले व्यक्ति हों, वे संकल्प बोलें, संकल्प बोलने के पीछे जो प्रतिज्ञा है, उसकी घोषणा की जाए अथवा लिख करके या छपे हुए पर्चे पर दोनों प्रतिज्ञा हमने क्या छोड़ा और क्या नहीं छोड़ा? वह दक्षिणा-पत्रक के रूप में लाकर के लाल मशाल के सामने-गायत्री माता के सामने प्रस्तुत कर देना चाहिए और विश्वास करना चाहिए कि अपने ज्ञानयज्ञ की लाल मशाल- यही अपना गुरु है। गायत्री माता ही अपना गुरु है। गायत्री माता को ही गुरु मानना चाहिए और लाल मशाल को ही गुरु माना जाना चाहिए, व्यक्तियों को नहीं।

व्यक्तियों के लिये अब मैं सख्त मना करता हूँ। कोई व्यक्ति गुरु बनने की कोशिश न करे, क्योंकि जहाँ तक मेरे देखने में आया है कि बहुत ही कम या नहीं के बराबर ऐसे लोग हैं, जो व्यक्तिगत रूप से गुरु दीक्षा देने में समर्थ हैं। खास तौर से अपने गायत्री परिवार की सीमा के अंतर्गत ये बातें बहुत ही मजबूती के साथ जमा देनी चाहिए कि अब कोई व्यक्ति उदण्डता न फैलाने पाए। ठीक है मैं जब तक रहा दीक्षा देता रहा। लेकिन मेरी जीवात्मा ने कहा- मैं इसका अधिकारी हूँ। तभी मैंने ये कदम उठाया। लेकिन मैं देखता हूँ, असंख्य मनुष्य जो बिलकुल अधिकारी नहीं हैं, इस बात के, अपने आपको झूठ-मूठ और दूसरों को ठगने के लिए

अपने आपको ऐसा बताते हैं, हम गुरु हैं, हम इस लायक हैं, वह लोग इस योग्य बिल्कुल नहीं हैं। हमको इस झगड़े में पड़ने से बचना चाहिए। जिस तरीके से राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का झण्डा ही गुरु होता है, जिस तरीके से सिक्खों में गुरुग्रंथ साहब ही गुरु होता है; इसी तरीके से अपनी गायत्री परिवार- युग निर्माण परिवार के अंतर्गत गुरु केवल लाल मशाल को माना जाना चाहिए।

ये दसवाँ अवतार है, आपको याद रखना चाहिए। नौ अवतार पहले हो चुके हैं, यह दसवाँ अवतार अपनी यह लाल मशाल है, इसको निष्कलंक अवतार भी कह सकते हैं। यह निष्कलंक अवतार और लाल मशाल अब हम सबका यही गुरु होगा। आइन्दा से यही गुरु होगा और आइन्दा से हरेक गायत्री परिवार के व्यक्ति और मेरे चले जाने के बाद में मुझे भी गुरु मानने वाले व्यक्ति केवल इस लाल मशाल को ही गुरु मानेंगे और यह मानेंगे यही हमारा गुरु है। श्रद्धा इसी के प्रति रखेंगे और ज्ञान के प्रकाश की ज्योति इसी से ग्रहण करेंगे। इसके पीछे भगवान् की और संभवतः मेरी भी कुछ प्रेरणा भरी पड़ी है। इस मर्यादा का पालन करने वालों को सबको लाभ मिलेगा। इस तरीके से गुरु दीक्षा और यज्ञोपवीत संस्कारों के क्रिया-कृत्य को पूरा किया जाना चाहिए।

ॐ द्यौः शान्तिः .....शांतिः ॥

प्रस्तुत पुस्तक का ज्यादा से ज्यादा प्रचार-प्रसार कर लोगों को जागरूक करने हेतु निवेदन है। -प्रकाशक

मूल्य- 4/00

प्रकाशक

श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट (TMD)

शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तराखण्ड) 249411

फोन- 01334-260602 **फैक्स-** 260866 Web. :www.awgp.org